

समावेशी लोकतन्त्र की गांधीवादी राह एवं भारत

अजय कुमार सिंह^{1a}, संजय शर्मा^b

^aएसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, हण्डिया पी. जी. कालेज, इलाहाबाद, उ०प्र०, भारत

^bअसिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, बी. एम. एस. डी. कालेज, इलाहाबाद, उ०प्र०, भारत

ABSTRACT

प्रस्तुत शोध पत्र में मुख्यतः तीन बिन्दुओं पर क्रमशः विचार किया गया है। प्रथम में, सर्वप्रथम समावेशी लोकतन्त्र की बात करने वाले टेकिस फोटोपुलुस के विचारों को रखा गया है। द्वितीय में वर्तमान भारतीय परिवेश एवं सरकार के समावेश के पहल की बात की गई है तृतीय बिन्दु के तहत गांधी जी के विचारों में व्याप्त समावेश के तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। इन्हीं बातों को मद्देनजर निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास किया गया है कि गांधीवादी समावेश की राह सर्वोत्तम है, जबकि हम इससे भटक रहे हैं।

KEY WORDS: टेकिस फोटोपुलुस, महात्मा गांधी, समावेशी लोकतंत्र

आजकल 'समावेशी' शब्द भारत में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विमर्शों में बहुतायत से प्रयोग हो रहा है। समावेशी एक नया शब्द है जिसका अर्थ है – "समाज के सभी स्तरों पर सभी नागरिकों की प्रत्यक्ष सहभागिता।" (योजना, अगस्त 2013) गांधीजी ने कभी समावेशन शब्द का प्रयोग नहीं किया। "कतार में अखिरी व्यक्ति का हक" हिन्द स्वराज का यह विचार गांधीवादी समावेशन एवं स्वराज की अवधारणा का नैतिक आधार एवं केन्द्र बिन्दु है।

समावेशी लोकतंत्र का मूल विचार सर्वप्रथम 1996 में टेकिस फोटोपुलुस* की रचना "टुवर्ड्स एन इंकलूजिव डेमोक्रेसी : दि क्राइसिस ऑफ दि ग्रोथ इकोनोमी एंड दि नीड फॉर ए न्यू लिबरेटरी प्रोजेक्ट में आया। फोटोपुलुस ने कहा कि साम्यवादी देशों में समाजवादी व्यवस्था के ध्वस्त होने से लोगों को सुखानुभूति हुई कि पूंजीवाद की विजय हुई और इसका अब कोई विकल्प नहीं है, जबकि विश्व ने राज्य को सर्वशक्तिशाली एजेंसी मानने वाली प्रणालियों के विखराव से कुछ अधिक का रसास्वादन किया। (फोटोपुलुस, 1997) फोटोपुलुस के शब्दों में— "द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की चौथाई सदी में सामाजिक लोकतन्त्र के जिस रूप कल्याणकारी राज्य की सरकारी प्रतिबद्धता, पूर्णरोजगार, समाज के कमजोर वर्ग के पक्ष के आय और सम्पत्ति का पुनर्वितरण था, वह मर चुका है उसका स्थान नवउदारवादी आम सहमति ने ले लिया है। फोटोपुलुस मानते हैं कि समाजवाद और सामाजिक लोकतन्त्र के रूप में जो व्यवस्था बिखरी वह वास्तव में केन्द्रीकृत समाजवादी व्यवस्था का पतन था। यह एक ऐसी ऐतिहासिक परम्परा थी जिसका उद्देश्य क्रांतिकारी साधनों से सत्ता कब्जा करना था। यह क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन के लिए एक आवश्यक शर्त थी। फोटोपुलुस कहते हैं— "लोकतन्त्र के समक्ष बहुआयामी संकट है। मौजूदा बहुआयामी संकट

परिस्थितिकीय, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक है। जिसकी जड़े समाज के सभी स्तरों के गैर- लोकतांत्रिक संगठनों में फैली हुई है।" (वही) इसका मतलब यह हुआ कि विभिन्न कुलीन वर्गों के हाथ में सत्ता का केंद्रित होना ही संकट के सभी पहलुओं की नींव का पत्थर है।

भारत आज गहरे संकट से जूझ रहा है। स्वतन्त्रता के पारंपरिक अर्थ में देश में स्वराज तो है, परन्तु सुराज, सुशासन और गांधीजी का स्वराज तो नहीं है। समावेशन¹ पर उचित कदम उठाने के बजाय भारत व्यापक तुष्टिकरण की ओर भटक गया है। सामाजिक राजनीतिक दृष्टि से देखे तो सब कुछ सतही है। काम कम दिखावा अधिक है। भारत में समावेशी लोकतन्त्र का अर्थ है— "सरकारी रियायतों वाले कुछ सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रम।" आर्थिक रूप से सरकार ने अपनी सोच से जो आर्थिक कार्यक्रम चलाए उनमें प्रमुख है— महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) गरीबों के लिए घर, इन्दिरा आवास योजना, सार्वजनिक विवरण प्रणाली एवं अन्य। महात्मा गांधी इस तरह के खैरात के कार्यक्रमों का कभी अनुमोदन नहीं करते जिसमें गरीबों, बेरोजगारों को काम की भीख मांगनी पड़ती। अपमानजनक जीवन जीने को विवश होना पड़ता। स्वावलम्बी होने की जगह परावलम्बी बनना पड़ता। गांधीजी इस बात से कभी सहमत नहीं होते कि जनता को काम तथा अन्य निःशुल्क सुविधाओं के चक्कर में भ्रष्ट प्रणालियों का हिस्सा बनने को विवश होना पड़ेगा। देखा जाय तो सरकार के सबकी हिस्सेदारी और समानता को प्रोत्साहन देने वाले आर्थिक कार्यक्रम भ्रष्टाचार में डूबे हुए हैं। सरकार द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रम देखे तो सामाजिक रूप से वे अपना प्रभाव न के बराबर छोड़ पाए हैं। नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्यसेन ने इस बात को इंगित किया कि कैसे खासकर पूरे एशिया में सामाजिक बहिष्कारों की वजह से वंचनाओं ने जन्म

लिया और व्यक्तिगत अवसरों की सीमाएं बांध दी गई। एडम स्मिथ के "मार्गदर्शक वंचना की व्याख्या" लोकजीवन में बिना झिझक भाग लेने की असमर्थता का हवाला देते हुए कहते हैं कि यह सामुदायिक जीवन में भागीदारी के अधिकारों से उपजी एक किस्म की वंचना है। सामाजिक संबंधों से बहिष्कार दूसरे क्षेत्र जैसे-शिक्षा, रोजगार और बाजार से वंचित होने से भी जुड़ा है और यह क्षमताओं से वंचित करना ही है। वंचित वर्ग में अनुसूचित जाति के लोग तो स्वाधीनता के बाद कुछ सालों तक व्यवस्था से बाहर ही बने रहें। आज तक वे सामाजिक भागीदारी हासिल नहीं कर पाए। वर्षों पहले अमेरिकी न्यायविद् लुई डी ब्रैंड ने कहा था कि किसी देश में लोकतन्त्र हो सकता है या थोड़े से लोगों के हाथों में भारी संपदा का संकेद्रण हो सकता है, परन्तु दोनों एक साथ नहीं रह सकते। आज देश में अरबपतियों की संख्या और उनकी दौलत में नाटकीय तरीके से वृद्धि हुई है। परिणाम यह सामने आया कि विषमता की खाई दिनों-दिन चौड़ी होती गई। राजनीति पर अमीरों का कब्जा होता जा रहा है। कुछ समय पहले न्यूयार्क स्थित एक अमेरिकी थिंक टैंक 'डेमास' द्वारा 'स्टैकड डेक' नाम से एक रिपोर्ट जारी की गई थी जिसमें इस बात का हवाला दिया गया कि किस तरह से राजनीति पर अमीरों और पूँजीपतियों का कब्जा होता जा रहा है जिसके फलस्वरूप गतिशीलता धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है और सामाजिक आर्थिक विकास की सीढ़ियों से नीचे से ऊपर चढ़ने में कितनी रुकावटें आ रही हैं। रिपोर्ट में भारत और अमेरिका की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। यदि क्रिस्टिया फ्रीलैंड के तर्कों पर ध्यान दे जो उन्होंने अपनी पुस्तक प्लुटोक्रेट्स : द राइज ऑफ द न्यू ग्लोबल सुपर रिज में दिया तो अमेरिका में आए सुनहरे युग की आवृत्ति भारत में 1990 के दशक के बाद हुई। उसी युग के विलियम फासेज के शब्दों में - "अमेरिका को अमेरिका बनाने में एक पूरी नस्ल समाप्त हो गयी।" तो क्या भारत में यह होगा। फिलहाल इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण का यह चेहरा हमारे गांधीवादी मूल्यों को मार रहा है। आज सम्पूर्ण देश में लोकतन्त्र का जयघोष बाजार द्वारा हो रहा है। सबको समान मानने की बात की जा रही है। सबको जागरूक बनाने की बात हो रही है। समावेशी लोकतन्त्र की बात कर बाजार सिर्फ मुनाफा चाह रहा है। दो पैसे की चीज को दो हजार में बेचना बताकर स्मार्टनेस सिखाया जा रहा है। यह नैतिक निरपेक्ष है। यहां नागरिक को जागरूक नहीं बल्कि ग्राहक को सूचना देना, जागरूक बनाना, सचेत करना सिखाया जा रहा है। (योजना, अगस्त 2013 पृ029.32)

आज के दौर में युवा भारत में समावेशी लोकतन्त्र की बात हो रही है। सपने दिखाया जा रहा है लेकिन उन्हें पूरा नहीं किया जा रहा है। सामाजिक दायित्वों के बखूबी निर्वहन की बात की जाय तो संस्थाओं की संवेदनहीनता स्वयः उजागर हो रही है। योजना आयोग उन्हें गरीब नहीं मानता जो गाँवों में 26 रुपये

और शहरों में 32 रुपये खर्च प्रतिदिन करते हैं। आंकड़ों की बाजीगरी में हम इतने आगे हैं कि गरीबों की संख्या घटा या बढ़ा सकते हैं। राजनीतिक चेतना और रणनीतिक कौशल का लाभ शासक वर्ग बखूबी ले रहा है। समावेशन की बात हो रही है सामंती वंशवाद परिवारवाद के सहारे। समाज को शैक्षणिक रूप से पंगु बनाया जा रहा है। बच्चे को कलम किताब की जगह थाली चम्मच पकड़ाया जा रहा है। शिक्षकों को अधिकारियों को यह बताना जरूरी है कि बच्चों को आज क्या खिलाया न कि क्या पढ़ाया।

देश में यह दावा किया जा रहा है कि पंचायती राज व्यवस्था समावेशी लोकतन्त्र लाने में सहायक होगी। दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं है। गुजरात जैसे राज्यों में सरकार ने सेज (विशेष आर्थिक क्षेत्र) और सर (विशेष औद्योगिक प्रक्षेत्र) जैसी योजनाओं के क्रियान्वयन कर विकेन्द्रीकरण का मजाक बनाया। पंचायतों के निर्णयों को पैरो तले रौंदते हुए किसानों की जमीन को औद्योगिक घरानों और खनन माफियाओं को सौंप दिया। पंचायत अनुसूचित क्षेत्रों का विस्तार अधिनियम 1996 ने जनजातीय समुदायों को उन प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण का अधिकार दिया जिन पर वे अपनी आजीविका के लिए निर्भर थे। जमीनें हस्तान्तरित न कर राज्य उन्हें अतिक्रमणकर्ता² घोषित कर दिया। अगर समावेशन की मंशा होती तो मदद की गई होती, लेकिन प्रमुखता खनन और औद्योगिकीकरण को दी गई। (वही पृ034) देश में राजनीतिक रूप से समावेशी लोकतंत्र का एक चेहरा और दिख रहा है। राज्य अधिकार सुलभ करा रहा है। नही? इस दिशा में चल रहा है। वंचितों को बता रहा है कि अधिकारों की मांग आपका अधिकार है। अधिकारों की सूची लम्बी होती जा रही है, लेकिन कर्तव्यों के साथ तालमेल बैठाने की कोई कोशिश नहीं हो रही है। हिंसा और अराजकता तीव्रता से बढ़ रही है। अधिकारों की मांग को लेकर आंदोलन हो रहे हैं। (वही) आज एक प्रश्न मेरे मन में कौंधता है और शायद आपके भी। वर्तमान भारतीय समाज का नेतृत्व कौन कर रहा है? इसमें संदेह नहीं कि बदलने का काम तो टेक्नोलॉजी कर रही है लेकिन नेतृत्व करने का। "देश में सत्ता और दबाव समूहों के अनेक दल बन गये हैं। ये समूह अपने-अपने समुदायों का नेतृत्व कर रहे हैं लेकिन राष्ट्र का। समाज का मूल नेतृत्व कभी बौद्धिक वर्ग के हाथ में था लेकिन आज राजनीतिक वर्ग ने बौद्धिक वर्ग को हाशिए पर धकेलकर स्वयं उसकी जगह ले ली है। शिक्षा हो या संस्कृति, ज्ञान हो अथवा परम्परा, इन सबका निर्धारण करने की दृष्टि से राजनीतिक वर्ग आज का सबसे बड़ा 'सैलिब्रिटी' है। आज धर्म और राजनीति का मेल धर्मनेता के रूप में सामने आ रहा है। धर्म राजनीति को आस्था और अनुयायी (वोट) दिलाता है तथा राजनीति इन्हें शक्ति देती है। आज समावेशन की बात करने वाले देश में कोई शख्स चौंकाने वाला बयान दे देता है। और देखते ही देखते वह समाज की चेतना में नशे की तरह फैल जाता है। इस तथ्य को सहिष्णुता, असहिष्णुता

की बहस में देखा गया। वे लोग कौन थे जो बता रहें थे कि हमारा देश सहिष्णु है अथवा असहिष्णु? क्या यह किसी समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक या शीर्ष आध्यात्मिक व्यक्ति के अध्ययन अथवा अनुभव से सिद्ध हुआ था?" (दैनिक जागरण, 18 फरवरी 2016)

वैश्विक संदर्भ में एवं भारत में देखे तो एक उदार लोकतांत्रिक प्रणाली में किसी भी कीमत पर आर्थिक विकास और कुलीनतन्त्र द्वारा संचालित बाजार से समावेशी लोकतन्त्र सुनिश्चित नहीं हो सकेगा। हमें गांधी जी के विचारों को अपने जीवन में उतारते हुए समावेशन की सच्ची नैतिक, मानवीय राह पर चलना होगा। फोटोपुलुस तो यहां तक मानते हैं कि समावेशी लोकतन्त्र की अवधारणा सर्वोच्च मानवीय आदर्श की अभिव्यक्ति है और बहुआयामी संकट से मुक्ति पाने का रास्ता भी है। लेकिन मानव उद्देश्य "असीमित आर्थिक समृद्धि" हो तो क्या समावेशन संभव होगा। "असीमित आर्थिक समृद्धि" हासिल करने के लिए हम साधन पवित्र नहीं अपनायेंगे। हम दूसरों के पेट पर पैर रखकर अपनी मंजिल पाने का प्रयास करेंगे। हमारे और पश्चिम की सोच और सपने में अंतर है। हम पश्चिम की नकल भी नहीं कर सकते। राधाकृष्णन ने कहा— गांधी का यह विश्वास था कि पूरी दुनिया की गहरी जड़े ऊँची आकांक्षाएं एक हैं। वह जानते थे कि इस ऐतिहासिक मानवता का उद्देश्य विश्व सभ्यता, विश्व संस्कृति और विश्व समुदाय का विकास करना है और लोगों के दिलों में गहरे तक घर कर चुके अंधेरे को दूर कर उसकी जगह समझ और सहिष्णुता स्थापित करने की जरूरत है।

समावेशी लोकतन्त्र का गांधीजी का नजरिया सहृदय नैतिक सोच से सामने आया। बात 1904 की है गांधी जी एक रेलगाड़ी से जोहांसवर्ग जा रहे थे। उनके मित्र हेनरी पोलाक ने जॉन रस्किन द्वारा लिखित पुस्तक अंटू दि लास्ट उन्हे दी थी, जिसे वे इस लम्बी यात्रा के दौरान पढ़ रहे थे। इस छोटी सी पुस्तक में 1860 में लिखे चार निबंध शामिल थे। पुस्तक न्यू टेस्टामेंट (बाइबल) की एक नीति कथा से प्रभावित थी, जिसको रस्किन ने 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटेन के औद्योगिक समाज की आलोचना के तौर पर पेश किया था। उन्होंने उसका अनुवाद कर उसकी व्याख्या "सर्वोदय" के रूप में की। "सर्वाधिक लोगों की सर्वाधिक भलाई के उपयोगितावादी सिद्धान्त को नकारते हुए गांधीजी ने इस बात पर बल दिया कि समाज की वास्तविक खुशी तभी हासिल की जा सकती है जब "कतार में आखिरी व्यक्ति का भी कल्याण" हो सके। व्यक्ति का सही अर्थों में कल्याण तभी संभव है, जब समाज का भी कल्याण हो। समावेशन का यह विचार ही गांधीवादी स्वराज की अवधारणा का नैतिक आधार और केन्द्र बिन्दु है। (योजना, अगस्त 2013 पृ05)

गांधीजी ने नैतिक सिद्धान्तों के अनुपालन के लिए मजबूती से जोर दिया, क्योंकि इसके अनुपालन से ही ब्रिटिशराज की बुराइयों से छुटकारा मिल सकता था। उनके मुताबिक

भारतीय सभ्यता और संस्कृति व्यवहार की सबसे अच्छी प्रतिनिधि है, साथ ही धर्म की अवधारणा (नैतिक कर्तव्य) अन्य सभी खूबियों पर भारी है। गांधीजी सबसे महत्वपूर्ण इकाई व्यक्ति को मानते थे। क्योंकि वह निजी स्तर पर सत्य का साधक और अहिंसा का व्यवहारकर्ता होता है। इंडीविजुअल का स्वभाव निष्पाप होता है और उस पर क्रूर शक्तियाँ हावी नहीं होती। इंडीविजुअल स्वार्थ रहित होता है, जिसके क्रियाकलाप बिना किसी पुरस्कार की उम्मीद के समाज को लाभ प्रदान करने वाले होते हैं। इस विचार से देखा जाय तो गांधीजी ने एक ऐसी प्रणाली की परिकल्पना की थी, जिसमें केवल अच्छे स्वभाव के ही लोग होंगे जो कभी कुछ गलत नहीं करेंगे। इसी तरह सामाजिक ताने-बाने के रूप में ये व्यक्ति समाज दुनिया को एक रहने लायक स्थान बना देंगे, जहां सभी परोपकारी तरीकों से एक दूसरे की मदद करेंगे। लोगों के मेल से कानून का शासन स्थापित होगा और एक अच्छा राजनीतिकतन्त्र भी तैयार होगा, जिसमें निःस्वार्थ सेवा का भाव होगा, वह भी बिना किसी पुरस्कार की उम्मीद के। जैसा कि भीखु पारिख भी कहते हैं— 'मानव कल्याण अविभाज्य है, इसमें उत्पीड़न की प्रणाली विजेता नहीं हो सकती।' गांधीजी के मुताबिक कोई भी तन्त्र हो वह विकेंद्रीकृत हो, जहां बहुमत तो प्रबल हो ही, नैतिक मूल्य बरकरार रहे। तन्त्र को समाज को अहिंसा की ओर ले जाना चाहिए। स्वतन्त्रता को लेकर गांधी जी के विचार महज राजनीतिक स्वतन्त्रता नहीं बल्कि उसके साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता भी है। जिसके माध्यम से समाज को अहिंसक बनाया जा सकता है। गांधी जी का मत था कि "भारत की सबसे बड़ी खूबी इसकी धैर्य की भावना और उच्च नैतिकता है। गांधी जी ने जोर देकर कहा कि स्वराज से मेरा मतलब लोगों की सहमति से उस भारतीय सरकार से है, जिसमें सभी व्यक्तों और स्त्री-पुरुषों की भागीदारी हो। गांधी जी के मुताबिक वास्तविक स्वराज तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब हिन्दू और मुसलमान में एकता हो। जब समाज से अस्पृश्यता का सफाया हो जाय, और जब गाँव आत्मनिर्भर इकाइयों के रूप में विकसित हो जाय।

गांधी जी औद्योगिक और शहरी समाज को पसंद नहीं करते थे। उनके लिए ग्रामीण बस्तियां आदर्श बस्तियां थी, जो अहिंसक समाज में बदल सकती थी। नेहरू जी को 5 अक्टूबर, 1845 को लिखे एक लम्बे पत्र में गांधी जी ने कहा— 'मुझे पूरा विश्वास है कि यदि भारत को सही तौर पर स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है और भारत के माध्यम से विश्व को भी, तो देर-सबेर लोगों को यह बात स्वीकार करनी होगी कि उन्हें गाँवों में रहना होगा। शहरों और महलों में करोड़ों लोग कभी भी एक दूसरे के साथ शांति से नहीं रह सकेंगे। गांधी जी कहते हैं— "मेरी कल्पना का गाँव वैसा नहीं होगा, जैसा आज दिखाई देता है। मेरे सपनों के गाँव में बुद्धिमान इंसान रहेंगे। वे पशुओं की भाँति अंधकार और गंदगी में नहीं रहेंगे। स्त्री और पुरुष सभी स्वतन्त्र होने और

विश्व के किसी भी व्यक्ति के सामने खड़े हो सकेंगे। वहाँ न तो प्लेग होगा और न ही कोई चेचक, कोई भी बेकार नहीं बैठेगा और न ही कोई बिलासिता में डूबा रहेगा। सभी को अपने हिस्से का शारीरिक श्रम का योगदान करना होगा।

महात्मा गांधी का समूचा दर्शन ही समावेशन के तत्वों से युक्त है। अहिंसा, सर्वोदय, नैतिकता, धर्म और राजनीति सभी विचारों का मूल "सर्वधर्म समभाव," समरसता, आपसी भाईचारा और लोककल्याण है। गांधी जी ने व्यक्ति और स्वयं के प्रति, साथी इंसानों के प्रति और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व पर बल दिया। यदि इसे भारतीय संस्कृति के संदर्भ में देखे तो गांधी जी के लिए यह क्रम व्यक्ति, समष्टि और सृष्टि का रहता। आज गांधीवादी सोच को साकार कर मानव और प्रकृति के बीच संबंध को बेहतर बनाया जा सकता है और पर्यावरणीय संकट को टाला जा सकता है। फोटोपुलुस के विचारों पर गौर करें तो वे भी सतत विकास पर ब्रुंडलैंड समिति की रिपोर्ट से कोई आशा नहीं करते। वे कहते हैं कि दक्षिणपंथी और वामपंथी दोनों की ही धारणा एक जैसी है। फोटोपुलुस का कहना है कि विकल्प के रूप में दक्षिणपंथी जहां और बाजारीकरण का रास्ता सुझाते हैं, वही वामपंथी राजकीय दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति तथा मानवीय उपलब्धियों के इस दौर में प्रकृति को पूरा सम्मान दिया जाना चाहिए। इसके लिए गांधीवादी शिक्षा को अपनाने की जरूरत है।

यहाँ एक बात और ध्यान देने की है कि पश्चिमी विश्व में समावेशी लोकतंत्र का जो मुद्दा उठा उसके पीछे कारण क्या है? सीधी सी बात है उन्होंने अपनी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक नीतियों में नैतिक तत्वों की घोर उपेक्षा की और केवल 'आर्थिक तत्त्व' पर ध्यान केन्द्रित किया जो आमतौर पर शारीरिक और भौतिक विकास पर जाकर ठहरता है। इसने स्वयं के साथ लोगों के बीच और प्रकृति के साथ समरसता को चौपट कर दिया। गांधीवादी विचारधारा में व्यक्तिगत विकल्पों में नैतिकता और सदाचारिता का विशेष स्थान है। गांधीजी के विचारों में नैतिकता को वरीयता के केन्द्र में रखा गया है। गांधीजी ने हिन्द स्वराज में समावेशी लोकतंत्र की व्याख्या नहीं की और न ही इस शब्द का प्रयोग किया। 28 जुलाई 1946 को एक साक्षात्कार में उन्होंने व्यक्ति, राज्य, विश्व समुदाय के बीच परस्पर संबंधों के बारे में अपनी परिकल्पना को स्पष्ट किया। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि गांधी जी के स्वराज की अवधारणा में समावेशन के तत्व मौजूद हैं। हिन्द स्वराज को लिखे काफी वर्ष बीच चुके हैं तब से दुनिया काफी बदल चुकी है। संभवतः गलत दिशा में बढ़ी है। हमें गांधीजी के समावेशन के विचारों को आत्मसात करना होगा, अन्यथा हम वास्तविकता से कोसों दूर हो जाएंगे। जब तक

हिन्द स्वराज की परिकल्पना भारतीयों और समस्त मानव मात्र की परिकल्पना नहीं बन जाती, समावेशी लोकतंत्र संभव नहीं हो सकता।

टिप्पणी

1.टेकिस फोटोपुलुस ग्रीस के राजनीतिक चिंतक थे जिन्होंने अपनी पुस्तक टुवर्ड्स एन इंकलूजिव डेमोक्रेसी में समावेशी लोकतंत्र का विचार रखा। यह पुस्तक लंदन और न्यूयार्क में केसल द्वारा 1996 में प्रकाशित हुई।

2.समावेशन ही प्रतिनिधि लोकतंत्र और सहभागी लोकतंत्र के बीच सेतु का काम करता है। कुछ ऐसी ही बात मणिशंकर अय्यर की अध्यक्षता में पंचायत निकायों पर गठित एक समिति भी करती है। जिसमें इस मुद्दे को उठाया गया कि कोई ऐसा तरीका नहीं की एक आम आदमी उस संसद को अपनी समझ सके जिसमें 15-20 लाख अन्य की तरह उसका भी प्रतिनिधि मौजूद है।

3.यहाँ अतिक्रमण या अतिक्रमक राज्य द्वारा प्रयोग किया जाने वाला शब्द है यह जंगल की जमीन पर गैर कानूनी स्थिति दिखाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। जमीनी स्तर पर चलने वाले आन्दोलन इसे गलत मानते हुए राज्य और वन विभाग जैसी संस्थाओं को दोषी मानते हैं। दरअसल छत्तीसगढ़ खासकर सरगुजा के लोग अतिक्रमण के लिए 'बेजा कब्जा' शब्द का प्रयोग करते हैं।

संदर्भ

- धर, प्रांजल: वर्तमान समस्याएँ और गांधी जी की प्रासंगिकता, कुरुक्षेत्र, अंक अक्टूबर 2006
- अयंगर, सुदर्शन : समावेशी लोकतंत्र : एक गांधीवादी परिदृश्य, योजना, अगस्त 2013
- संपादकीय, योजना, अगस्त 2013
- फोटोपुलुस, टेकिस (1997) : *टुवार्ड्स एन इंकलूजिव डेमोक्रेसी: दी काइसिस ऑफ दी ग्रोथ इकोनामी एण्ड दी नीड फार ए न्यू लिवरेटरी प्रोजेक्ट*, न्यूयार्क,
- मोहन, अरविन्द लोकतंत्र का जयघोष, *योजना* अगस्त 2013
- अग्रवाल विजय एक बड़ी सांस्कृतिक चुनौती, संपादकीय *दैनिक जागरण*, 18 फरवरी 2016
- गुलापल्ली, शैलजा राज्य और स्वराज: एक गांधीवादी दृष्टिकोण, *वर्ल्ड फोकस*, मई 2014
- गांधी, मोहन दास करमचन्द *हिन्द स्वराज*